भरत

सन्तराम वत्स्य

सन्तराम वत्स्य

भरत

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

मूल्य : दो रुपये

द्वितीय संस्करण, १९७०

चित्रकार :
सुकुमार चटर्जी

प्रकाशक :
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२/३५, अन्सारी रोड, दरियागंज,
दिल्ली-६

मुद्रक :
राज कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली-३२

दो शब्द

भारतीय परिवारों में बड़ों-छोटों का पारस्परिक आदर-स्नेह कैसा होना चाहिए, इसे रामायण में सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों दृष्टियों से दिखाया गया है। रामायण को 'पारिवारिक काव्य' कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा।

भारतीय समाज-रचना का आधार 'संयुक्त परिवार' रहा है। इसे भारतीय जीवन की रीढ़ भी कहा जा सकता है। आज पश्चिम के प्रभाव से जीवन में अर्थ की प्रधानता हो गई है और संयुक्त परिवार, जिसका आधार स्नेह, सहयोग और त्याग था, टूट रहा है। इस रूप में कहना चाहिए, हमारी मर्यादाएं टूट रही हैं। भगवान् राम को 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहा जाता है। उन्होंने समाज में मर्यादाओं को बल प्रदान कर उन्हें दृढ बनाया।

रामायण में भरत का उदात्त चरित्र भ्रातृ-भाव का जीवन्त उदाहरण है। वे रामायण का हृदय है। आदिकवि वाल्मीकि से लेकर आज तक के समस्त कवियों ने, जिन्होंने भी रामायण का सम्पूर्णतः अथवा खंडशः आख्यान किया है, भरत के चरित्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

भरत की जीवन-कथा विभिन्न रामायणों के अतिरिक्त पुराणों में भी वर्णित है।

यह छोटी-सी सचित्र पुस्तक छोटों-बड़ों सभी के लिए उपयोगी बन सके, ऐसा मेरा प्रयत्न रहा है।

सन्तराम बत्स्य

जन्म और शिक्षा

अयोध्या नगरी में राजा दशरथ राज्य करते थे। एक के बाद एक, उन्होंने तीन विवाह किये पर फिर भी सन्तान नहीं हुई। उनकी पटरानी का नाम कौशल्या, मंझली का सुमित्रा तथा छोटी का कैकेयी था।

कोई सन्तान न होने से राजा दशरथ बहुत दुःखी थे। उन्हें दिन-रात चिन्ता लगी रहती थी कि मेरे बाद इस राज्य का क्या होगा ? पितरों को पिण्ड कौन देगा ? बुढ़ापे में किसका मुँह देखकर मैं सुख-सन्तोष के साथ मर सकूंगा ? उन्हें यह भी चिन्ता थी कि वे कोई सन्तान न होने के कारण पितरों के ऋण से उऋण नहीं हो सकेंगे। ज्यों-ज्यों बुढ़ापा बढ़ता जाता था, राजा दशरथ की चिन्ता भी बढ़ती जाती थी। उनके पास राज्य था, धन-सम्पत्ति थी, गुणवती सुन्दरी रानियाँ थीं पर एक भी पुत्र नहीं था। इसी दुःख ने उनके बुढ़ापे का सुख-चैन छीन लिया था।

अपने कुल-गुरु वसिष्ठ से राजा दशरथ ने अपने दुःख-

सन्ताप की कहानी कह सुनाई। फिर प्रार्थना की कि हे गुरुदेव, आप ही कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मेरी मनोकामना पूरी हो। कुलदीपक पुत्र की प्राप्ति से मेरे भीतर का अँधेरा नष्ट हो जाए, ऐसा कोई उपाय मुझे बताइये।

गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ को धीरज बँधाते हुए पुत्रेष्टि-यज्ञ करने की सलाह दी। राजा पुत्रेष्टि-यज्ञ करने के लिए तुरंत तैयार हो गया।

पुत्रेष्टि-यज्ञ की तैयारी होने लगी। शृंगी ऋषि ने इस यज्ञ का आचार्य बनना स्वीकार कर लिया। अब यज्ञ

उनकी देख-रेख में होने लगा ।

जब यज्ञ में पूर्णाहुति डाली गई तो उसी समय यज्ञ-कुण्ड में से अग्निदेव खीर से भरा सोने का पात्र लेकर प्रकट हुए । उन्हें देखकर सारे ऋषि-मुनि चकित रह गए । यह पात्र राजा दशरथ ने अग्निदेव से ग्रहण किया । गुरु वसिष्ठ बोले, "राजन्, तुम्हारा यज्ञ सफल हुआ । देवता तुम पर प्रसन्न हैं ।"

इस खीर को राजा दशरथ ने कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों रानियों में बाँट दिया ।

तीनों रानियों ने इस खीर को देवता का प्रसाद समझ-

कर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से ग्रहण किया।

इस यज्ञ के कुछ दिनों बाद ही तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं।

समय पाकर तीनों रानियाँ प्रसूता हुईं। कौशल्या के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कैकेयी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, किन्तु सुमित्रा के दो पुत्र उत्पन्न हुए।

महलों में चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। बाजे-गाजे बजने लगे। यह मंगल समाचार तुरन्त ही सारे नगर में फैल गया। सारी अयोध्यानगरी आनन्दविभोर हो उठी।

राजा दशरथ के आनन्द का क्या कहना ! उनके जीवन की अधूरी साध आज पूरी हुई थी। आज उनके एक नहीं, चार कुलदीपक पुत्रों का जन्म हुआ था। उनका सदा मुर्झाया रहने वाला चेहरा आज नए खिले कमल की तरह चमक रहा था। ब्राह्मणों को दिल खोलकर दान दिया जा रहा था।

कुलगुरु वसिष्ठ ने शुभ दिन देखकर राजकुमारों का नामकरण किया। कौशल्या के पुत्र का नाम 'राम' रखा गया और कैकेयी के पुत्र का 'भरत'। सुमित्रा के पुत्रों के नाम 'लक्ष्मण' और 'शत्रुघ्न' रखे गए।

चारों राजकुमार दिनों-दिन बढ़ने लगे। महलों में उनकी किलकारियां आनन्द की वर्षा करने लगीं। राजमहल में राजकुमारों की बाल-लीलाओं से जैसे नया जीवन आ गया। राजकुमारों की बढ़ोतरी के साथ-साथ राजा का आनन्द भी बढ़ता गया।

राजकुमार बढ़ते गए, बढ़ते गए। उनके लिए राजकुमारों के योग्य शिक्षा का प्रारंभ हुआ। शिक्षा से उनके स्वाभाविक गुण और भी निखरने लगे।

चारों भाइयों में आपस में बड़ा प्रेम था। वे साथ खेलते और साथ ही पढ़ते। फिर भी राम और लक्ष्मण की एक जोट हो गई और भरत और शत्रुघ्न की दूसरी।

दिन बीतते गए। चारों राजकुमार किशोर हो गए। एक दिन ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आए और राम और लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगकर, अपने यज्ञ की रक्षा के लिए तपोवन में ले गए।

उधर मिथिला में राजा जनक अपनी कन्या सीता के स्वयंवर के लिए धनुष-यज्ञ रचा रहे थे। ऋषि विश्वामित्र ने धनुष-यज्ञ द्वारा सीता-स्वयंवर की बात राम और

लक्ष्मण को बताई। धनुष-यज्ञ की बात सुनकर दोनों राजकुमारों के मन में उसे देखने का चाव पैदा हुआ। इसलिए विश्वामित्र उन दोनों को भी साथ लेते गए।

जब स्वयंवर में आए राजा-महाराजाओं में से किसीसे भी शिव-धनुष नहीं टूटा तो विश्वामित्रजी की आज्ञा से राम ने उस धनुष को तोड़ डाला। महाराजा जनक ने अपने पुरोहित को राजा दशरथ के पास यह शुभ-समाचार सुनाने भेजा।

उधर राजा दशरथ पहले से ही सोच रहे थे कि राजकुमारों के लिए योग्य कन्याओं की खोज की जाए। वे इस समाचार से बड़े प्रसन्न हुए और तुरन्त रथ-सेना आदि को सजाने की आज्ञा दी। वे पूरी सज-धज के साथ जनक की राजधानी मिथिला में पहुँचे। वहां शास्त्रविधि से शुभ-मुहूर्त में चारों राजकुमारों का विवाह-संस्कार बड़ी धूम-धाम से

सम्पन्न हुआ ।

राम का विवाह सीता से, लक्ष्मण का सीताजी की छोटी बहन उर्मिला से तथा भरत और शत्रुघ्न का विवाह राजा जनक के छोटे भाई कुषधज की माण्डवी और श्रुतकीर्ति नामक कन्याओं से हुआ ।

चारों राजकुमार नई ब्याही राजकुमारियों को लेकर बाजे-गाजे के साथ अयोध्या लौट आए ।

चारों राजकुमारों और चारों पुत्र-वधुओं के साथ जब राजा दशरथ अयोध्या में वापस लौटे तो उनकी अगवानी के लिए नगर-निवासी उमड़ पड़े । सारा नगर नई-नवेली बहुओं को देखने के लिए उमड़ पड़ा । उधर राजमहल की शोभा का क्या कहना ! तीनों राजरानियाँ ब्याह कर आए बेटों और बहुओं की आरती उतारने के लिए खड़ी थीं । चारों ओर आनन्द ही आनन्द छाया हुआ था । बाजों-गाजों के कारण कुछ सुनाई नहीं देता था ।

कई दिनों तक विवाहों का यह धूम-धड़ाका लगा रहा ।

इसके कई दिनों बाद भरत और शत्रुघ्न भरत की ननिहाल केकय देश को चले गए । उधर अयोध्या में राजा दशरथ के मन में आया कि राम राज-काज संभालने के योग्य हो गया है । उन्होंने सोचा कि मैं अपने जीते जी राम का राज्याभिषेक कर दूँ तो ठीक होगा । यह उनकी एक प्रकार से अन्तिम इच्छा थी । राज-काज का भार अपने योग्य बड़े पुत्र को सौंपकर वे अपना शेष जीवन भगवान् के भजन में लगाना चाहते थे । उन्होंने अपने मन की बात अपने कुल-

गुरु वसिष्ठ को कह सुनाई। वसिष्ठ राजा की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "महाराज, शुभ काम में देर नहीं करनी चाहिये। इसके बाद आप चिन्तामुक्त होकर अपना शेष जीवन प्रभु-भक्ति में लगाइये और जीवन का सच्चा सुख प्राप्त कीजिए।"

कुलगुरु वसिष्ठ की अनुमति मिलते ही राजा दशरथ ने राज्याभिषेक समारोह की तैयारी के लिए आज्ञा दी। सारे राजकर्मचारी बड़े उत्साह के साथ काम में जुट गए। नगर-निवासियों ने जब राम के राज्याभिषेक का सामाचार सुना तो उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। दशरथ की तीनों रानियाँ भी इस समाचार को सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं।

जब राम को कुलगुरु वसिष्ठ ने राज्याभिषेक की बात बताई तो उन्होंने संकोच और नम्रता से कहा, "इसकी ऐसी क्या जल्दी है।" महर्षि वसिष्ठ राम को राज्याभिषेक से पूर्व पालने योग्य नियम आदि बताकर चले गए।

राम राज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न नहीं हुए। वे सोचने लगे, 'हम सभी भाइयों के जन्म, संस्कार, खेल-कूद, शिक्षा और विवाह साथ-साथ हुए। किन्तु सब भाइयों में बड़ा होने के कारण राज्याभिषेक केवल मेरा होगा।' यह उन्हें उचित नहीं लगा। भरत और शत्रुघ्न उस समय अयोध्या में नहीं थे। उनका वहां न होना भी उन्हें अखरा। जब उनकी दायीं भुजा या आंख फड़कती तो उस शुभ शकुन से वे यही अनुमान लगाते कि सम्भवतः भरत और शत्रुघ्न आने वाले हैं। दो भाइयों की अयोध्या में अनुपस्थिति

उन्हें बार-बार खलती।

एक ओर राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं, दूसरी ओर कैकेयी की दासी मन्थरा, उसे राम की जगह भरत को युवराज बनाए जाने के लिए उकसा रही थी। उसकी यह कुचाल सफल हुई।

बहुत पहले राजा दशरथ ने कैकेयी को उसकी इच्छानुसार कभी भी दो वर देने की बात मानी हुई थी। मन्थरा के बहकावे में आकर कैकेयी ने वे दोनों वर राजा से मांगने का निश्चय किया। उसने एक वर में भरत के लिए युवराज का पद और दूसरे में राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगा।

राजा ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, बड़ी मिन्नतें कीं पर वह टस से मस नहीं हुई। राजा वर देने के लिए पहले से वचन दे चुके थे। वे अपने वचन से कैसे टलते!

दूसरी ओर वे राम के चौदह वर्ष वनवास की बात सोचकर व्याकुल हो रहे थे। बूढ़े राजा की गति साँप-छछूंदर जैसी हो रही थी। एक ओर रघुकुल की पुरानी रीत थी और दूसरी ओर पुत्र की ममता। उनसे न तो वर देते बनता था और न मना करते। बूढ़े राजा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्या न करे। राजा के दुःख की सीमा नहीं थी। उन्हें आँखों के आगे अँधेरा और पैरों के नीचे की धरती खिसकती जान पड़ती थी।

जब राम को पता लगा कि माता कैकेयी ने पिता से दो वरदानों में भरत के लिए राजतिलक और राम के लिए

चौदह वर्ष का वनवास माँगा है तो वे पिता के पास गए और वन जाने के लिए आज्ञा माँगी।

दुःख से व्याकुल राजा दशरथ ने आँसू बहाते हुए राम को गले लगाया। व्याकुलता के कारण उनसे कुछ भी कहा नहीं जा रहा था। गला रुंधा हुआ था। आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। वह मन ही मन भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह राम का वन जाना टल जाए।

राम ने पिता से कहा, "आप इस छोटी-सी बात के लिए क्यों दुःखी हो रहे हैं? आपने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया।" दशरथ क्या कहते!

राम पिता के चरण छूकर, माताओं से मिलने, विदा लेने गए। लक्ष्मण और सीता भी उनके साथ हो गए। अयोध्या-वासियों को पता लगा तो वे इस समाचार से बहुत ही दुःखी हुए। उनमें से कितने ही राम के साथ वन जाने लगे। कठिनाई से राम ने उन्हें वापस लौटाया।

उधर राम के सीता और लक्ष्मण सहित वन चले जाने से राजा दशरथ संताप से व्याकुल होकर मूछित हो गए। अन्त में इसी दुःख के कारण राजा ने प्राण त्याग दिए।

चार पुत्रों में से दो वनवास के लिए चले गए और दो अपनी ननसाल गए हुए थे। राजा का दाह संस्कार करने के लिए एक भी पुत्र अयोध्या में नहीं था।

अयोध्या की प्रजा भी राजा के बिना अनाथ हो गई थी। वैसे भी कैकेयी भरत को राजगद्दी पर बिठाने के लिए उतावली थी। कुल-गुरु वसिष्ठ ने सिद्धार्थ नामक मंत्री को भरत और शत्रुघ्न को बुला लाने के लिए भेजा।

सिद्धार्थ ने भरत को यह नहीं बताया कि अयोध्या में उसके पिता राजा दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। वह यह बिना बताए ही दोनों भाइयों को अयोध्या लौटा लाया।

जब रथ पर बैठे भरत-शत्रुघ्न ने अयोध्या में प्रवेश किया तो नगर-वासियों ने उन्हें देखकर अनदेखा कर दिया। कोई उनके स्वागत-सत्कार के लिए आगे नहीं बढ़ा। सारे नगर में विचित्र सन्नाटा-सा छाया हुआ भरत ने देखा। चारों ओर मुर्दनी-सी छायी हुई थी। सारी अयोध्या नगरी भरत को विधवा जैसी शोभाहीन और गुम-सुम दिखाई दी।

महलों में भी वैसी ही चुप्पी छायी हुई थी। राजकर्मचारी भरत को ओर देखकर आँखें फेर लेते थे। कोई भी उनसे बोला-चाला नहीं। भरत की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि सब कुछ बदला-बदला क्यों है? उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठ रही थीं।

वह सबसे पहले अपनी माता कैकेयी के पास गया। उसने माता के चरण छूकर प्रणाम किया। कैकेयी ने चरणों पर झुके भरत को उठाकर प्यार से गले लगाया। भरत ने जब माँ के चेहरे की ओर देखा तो उनका मन अधीर हो उठा। कैकेयी ने अपने गहने उतारे हुए थे। उसके कपड़े भी पहले जैसे नहीं थे।

भरत ने धड़कते दिल से पूछा, "माँ, पिताजी कहाँ हैं? मुझे यहाँ का सब कुछ बदला-बदला-सा क्यों लग रहा है? मुझे जल्दी बताओ, बात क्या है?"

कैकेयी ने अपने स्वर में बनावटी दुःख का पुट देकर

कहा, "बेटा, तुम ठीक ही कह रहे हो। तुम्हारे मन की शंका सच्ची है। तुम्हारे पीछे यहाँ बहुत कुछ बदल गया है। अयोध्या को अनाथ करके तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधार गए हैं। बेटा, देर-सवेर यह शरीर सभी को छोड़ना पड़ता है। किसीके भी माता-पिता सदा नहीं रहते। बुढ़ापे ने उन्हें आ घेरा था। इसमें दुःखी होने की क्या बात है! तुम्हारे पिता बड़े धर्मात्मा और सत्य-प्रतिज्ञ थे। वे अनेक यज्ञों के कर्त्ता और दानशील थे। वे धर्मात्माओं को प्राप्त होनेवाले स्वर्ग में गए हैं।"

यह सुनते ही शोक से व्याकुल भरत अचेत हो धरती पर गिर पड़ा। फिर सचेत होने पर 'हाय पिताजी! हाय पिताजी!!' कहते हुए छटपटाने लगा। "मैं अभागा अन्त समय आपके दर्शन भी नहीं कर सका। आप मुझे श्री राम को सौंपे बिना ही कहाँ चले गए।" इस प्रकार अनेक करुणाजनक विलाप करते हुए भरत रोने लगा।

रोते-बिलखते भरत को धीरज बंधाते हुए और अपने आंचल से उसके आंसू पोंछते हुए कैकेयी ने कहा, "बेटा, रोने धोने से क्या होगा! धीरज से काम लो। भगवान् भली करें। मैंने तेरे लिए सभी कुछ ठीक-ठाक कर लिया है।"

रुंधे कण्ठ से हिचकियाँ लेते भरत ने माँ से पूछा, "मरते समय पिताजी ने मेरे लिए कुछ कहा था क्या?"

"नहीं बेटा, वे 'हा राम! हा लक्ष्मण!! हा सीते!!! कहते हुए स्वर्ग सिधार गए।" कैकेयी ने उत्तर दिया।

"तो क्या उनके अन्तिम समय में राम, लक्ष्मण और

सीता उनके पास नहीं थे ? वे कहाँ थे ?"

तब कैकेयी ने सारी बात बताते हुए कहा, "तुम्हारे पिता ने राम का राज्याभिषेक करने की तैयारी की थी। एक बार मुझ पर प्रसन्न होकर दो वर माँगने को उन्होंने मुझे कहा था। उचित समय जान वे दो वर मैंने उनसे माँगे। एक वर में मैंने तुम्हारे लिए राज्य माँगा और दूसरे में राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। पतिव्रता सीता भी राम के साथ वनवास के लिए चली गई और लक्ष्मण भी हठ करके भाई के साथ वन चल दिया। उन सबके चले जाने पर दुःखी महाराज ने उनको पुकार-पुकारकर प्राण दे दिये।"

यह सुनते ही बिजली लगने से गिरे वृक्ष की तरह भरत धरती पर गिर पड़े और अचेत हो गए। बड़ी देर तक भरत की चेतना नहीं लौटी। अचेत पड़े भरत को हिला-डुलाकर चेतना में लाते हुए कैकेयी ने कहा, "पुत्र ! तुम इतने दुःखी क्यों हो रहे हो ? इतने बड़े राज्य को पाकर तुम्हारे सारे दुःख दूर हो जाएँगे। अब तो तुम्हारे सुख के दिन आ रहे हैं। यह शोक-सन्ताप छोड़ो और उठो।"

माता के ये शब्द भरत के हृदय में तीर की तरह चुभ गए। सन्ताप के साथ उसे क्रोध भी जलाने लगा। क्रोध में जलता हुआ भरत माँ पर बरस पड़ा, "कलमुँही, पति की हत्या करने वाली, अपना मुँह लेकर मेरी आँखों से दूर हो जा। मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता। मैं

जनमते ही क्यों नहीं मर गया था जिसके लिए यह सारा अनर्थ हुआ। मैं आग में जल मरूँगा या विष खाकर प्राण दे दूंगा। मैं तलवार से अपने हाथों अपना गला काट लूंगा। मैं किसी को अपना मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा। मैं कहीं का न रहा।" यह कहते हुए भरत वहाँ से ऐसे निकल पड़ा जैसे कोई जलते घर से निकलता है।

भरत कौशल्या के पास पहुंचा। उनके पाँवों में पड़कर बिलख-बिलखकर रोने लगा। कौशल्या के मन में संदेह था कि यह सब कुछ भरत की इच्छा से हुआ है। वे रोती हुई कहने लगीं, "अब रोते क्यों हो ? तुम्हारा चाहा तुम्हें मिल गया। महाराज स्वर्ग सिधार गए और राम, लक्ष्मण, सीता वन को। राज्य तुम चाहते थे, वह तुम्हें मिल गया। अब राज्य करो और सुख भोगो। तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई।"

बड़ी माँ के इन तीखे वचनों से भरत तिलमिला उठा।

उसने सौगन्ध खाकर कहा, "माँ, सच मानो, माँ की इस करतूत में मेरा ज़रा भी हाथ नहीं है। यदि इस सम्बन्ध में पहले से मुझे कुछ भी पता रहा हो या इसमें मेरी सलाह हो तो मुझे गोहत्या, ब्रह्महत्या और गुरु-हत्या का पाप लगे। माँ सच मानो, मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ। मेरा दोष इतना ही है कि मैंने पतिघातिनी कैकेयी के गर्भ से जन्म लिया है।"

हृदय से निकले भरत के इन सच्चे शब्दों से कौशल्या को विश्वास हो गया कि इसमें भरत का हाथ नहीं है। उन्होंने पाँवों में पड़े भरत को उठाकर गले से लगा लिया और कहने लगीं, "बेटा, तुम्हारे घर से बाहर रहने के कारण ही यह इतना बड़ा अनर्थ हो गया। कैकेयी ने तुम्हें सब कुछ बता दिया होगा। इस समय मेरा राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन-वन भटकता हुआ, अनेक दुःख भोग रहा है। राम सरीखे पुत्र को जन्म देकर भी आज मैं दुःखी हूँ। इसी से पता लगता है कि भाग्य बड़ा बलवान् है।"

भरत के अयोध्या पहुंचने के दूसरे दिन गुरु वसिष्ठ ने कहा, "महाराज का शव तेल की कड़ाही में सुरक्षित रखा

हुआ है। वत्स, उसका दाह-संस्कार और क्रिया-कर्म करो।"

भरत ने गुरु की आज्ञा मानकर, विधिपूर्वक दाह-संस्कार किया। चौदह दिन तक अन्य मृतक-संस्कार, क्रिया-कर्म होते रहे।

जब इन सब कार्यों से भरत को अवकाश मिला तो वसिष्ठ मुनि मंत्रियों सहित राजसभा में आए और भरत को बुलाकर कहने लगे, "वत्स, तुम्हारे पिताजी की आज्ञानुसार आज हम तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे।"

यह सुनकर भरत बोला, "गुरुदेव! राज्य से मेरा क्या सम्बन्ध! हमारे राजा तो राम हैं। मैं तो उनका सेवक हूँ। इतने दिन पिता के अन्तिम कृत्यों के लिए मैं यहाँ ठहरा हुआ था। कल ही कैकेयी को छोड़कर हम सब श्रीराम को वापस लौटाने के लिए, वन को चलेंगे। यदि और कोई नहीं भी चलता है, तो भी मैं और शत्रुघ्न अवश्य जाएँगे।"

ऋषि वसिष्ठ ने भरत को बहुत समझाया कि यद्यपि राम बड़े हैं तो भी पिता के वचन की रक्षा के लिए वे वनवास के लिए चले गए हैं। पिता के वचन से ही तुम्हें यह राज्य मिला है। प्रजा की रक्षा और पालन करना तुम्हारा धर्म है। राजा के बिना प्रजा विपत्तियों से घिर जाती है। इसलिए तुम राजा का पद ग्रहण करो।

बहुत समझाने-बुझाने पर भी भरत नहीं माना। जब उसे बताया गया कि पिता के वचनों का पालन करते हुए राम लौट कर नहीं आएँगे तो भरत ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "यदि राम वापस नहीं आएँगे तो मैंने भी निश्चय कर लिया है कि मैं भी राज्य का भार नहीं संभालूंगा। जैसे लक्ष्मण

बन में रहकर उनकी सेवा कर रहा है, मैं भी वैसे ही वन में रहकर उनकी सेवा करूँगा।"

भरत ने मंत्रियों से यात्रा की तैयारी करने और यात्रा-मार्ग को ठीक करने वाले आदमी भेजने के लिए कहा। राम का राज्याभिषेक करने के लिए सारा साज-सामान इकट्ठा करके ले चलने के लिए भरत ने आज्ञा दी।

दूसरे दिन सभी माताएँ, मंत्री, कुलगुरु वसिष्ठ, भरत, शत्रुघ्न तथा अनेक राजकर्मचारी और प्रजाजन राम को वापस अयोध्या लौटा लाने के लिए दण्डकारण्य की ओर चल पड़े।

पहले दिन गंगा के किनारे शृंगवेरपुर में पड़ाव डाला गया। श्रीराम भी इसी मार्ग से गए थे और यहीं से नौका द्वारा उन्होंने गंगा पार की थी। यहीं निषादराज गुह से उनकी भेंट हुई थी।

गुह को जब भरत के दल-बल सहित आने का समाचार मिला तो उसके मन में शंका पैदा हुई कि कहीं भरत श्रीराम का बुरा करने तो नहीं जा रहा है? उसने अपने सभी धीवर-बन्धुओं को सचेत करते हुए कहा कि तुम सब हथियारों से लैस होकर तैयार रहो। सारी नावों को दूसरी ओर तट पर ले जाकर बाँध दो। मैं पता लगाकर आता हूं कि भरत कहाँ जा रहा है और क्या करने जा रहा है।

गुह राजपुत्र भरत के लिए भेंट लेकर अपने अनेक बन्धुओं के साथ भरत के पास पहुंचा। वहाँ उसने वनवासियों जैसे वल्कल पहने और राम के वन जाने से दुःखी

भरत को देखा। भरत बार-बार राम का स्मरण कर रहे थे और लम्बी साँसें ले रहे थे।

गुह ने भरत को झुककर प्रणाम किया और भेंट दी। गुह का परिचय पाकर भरत ने उसे बड़े प्यार से गले लगाया और बोले, "सुना है, वन के लिए जाते श्रीराम ने तुमसे भेंट की थी। वे तुम्हारी ही नौका में गंगा पार गए थे। भैया! मुझे बताओ, वे किस ओर गए हैं, वे तुमसे क्या कह रहे थे? उन्होंने किस जगह रात काटी थी?"

तब गुह ने भारत को वह जगह बताई जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण ने रात काटी थी। रात को सोने के लिए बिछाई हुई कुशा को देखकर भरत फूट-फूटकर रोते हुए बोले, "जो राजमहल में रत्न-जड़े सोने के पलंगों पर सोया करते थे, उन्हें मुझ पापी के कारण, कुशाओं की सथरी पर, धरती पर सोना पड़ रहा है। मुझे धिक्कार है! मेरे ही कारण उन्हें इतने कष्ट झेलने पड़ रहे हैं।"

भरत के मन की बात जानकर गुह को चैन पड़ा। वह लौट आया और उसने सभी धीवरों को रात को निश्चिन्त होकर सोने की आज्ञा दी।

भरत दूसरे दिन प्रातः गंगा पार कर गुह द्वारा बताए मार्ग से भरद्वाज आश्रम की ओर चल पड़े। जब आश्रम थोड़ी दूर रह गया तो सभी को वहाँ ठहरने के लिए कहकर और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत आश्रम में गए। दोनों भाइयों ने भरद्वाज ऋषि को साष्टांग प्रणाम किया। जैसे भरत के आने से गुह के मन में शंका पैदा हुई थी, कुछ-कुछ वैसी ही शंका ऋषि भरद्वाज के मन में भी थी। वे भी भरत के मन

की थाह लेना चाहते थे। उन्होंने भरत को वल्कल पहने देखकर कहा, "भरत, तुम तो राज्य का शासन करने वाले हो, फिर यह वनवासी मुनियों जैसे वल्कल क्यों पहन रखे हैं ? और फिर वन में कैसे आए हो ?"

ऋषि भरद्वाज के मन का भाव भरत से छिपा नहीं रहा। उसने कहा, "ऋषिवर, आप से क्या छिपा हुआ है। मैं आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि श्री राम के राज्याभिषेक में जो विघ्न पड़ा है, उसमें मैं तिलभर भी दोषी नहीं हूँ। मैं उन्हें वापस लौटाने के लिए जा रहा हूँ, जिससे वे अपना राज्य संभालें और मैं उनकी सेवा में रह कर अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ।"

भरत के मन की बात जानकर ऋषि भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका उचित सत्कार किया। अपनी माताओं का ऋषि भरद्वाज को परिचय देते हुए भरत ने कौशल्या की ओर संकेत करके कहा, "ये हैं शोक तथा उपवास से दुबली; दीन-हीन बनी हुई; मेरी बड़ी माता और महाराज दशरथ की पटरानी। यही सिंह के समान पराक्रमी, तेजस्वी श्री राम की जननी हैं।" और फिर कैकयी की ओर संकेत करके कहा, "यह है दुष्टा, पतिघातिनी, अविचार और अभिमान की पुतली, अपने को सौभाग्यशालिनी समझने वाली, चेहरे से भली दीखने वाली किन्तु हृदय की खोटी मेरी माता कैकेयी।"

दूसरी रात सबने आश्रम में ही काटी। भरद्वाज जी ने ही बताया कि राम इस समय चित्रकूट में वनवास कर रहे हैं और वहीं जाकर तुम उनसे मिलो।

तीसरे दिन प्रातः ऋषि भरद्वाज ने चित्रकूट में राम की कुटिया की ओर जाने वाला मार्ग समझाकर उन्हें विदा किया।

ऋषि भरद्वाज के बताए हुए मार्ग से चलकर सब लोग चित्रकूट पहुँचे।

चित्रकूट में जब वे श्री राम की पर्णकुटि के पास पहुँचे तो वहाँ श्री राम के पैरों के निशान देखकर और उन्हें पहचान कर भरत ने राम की चरण-रज को अपने माथे पर लगाया और उस धरती की बार-बार वन्दना करने लगा। उसे पूरा विश्वास हो गया कि राम यहीं-कहीं पास में रहते हैं और शीघ्र ही उनके दर्शन होंगे।

इतने सारे नगर-वासियों के साथ भरत के चित्रकूट पहुँचने पर वन के शान्त वातावरण में हलचल-सी पैदा हो गई। किरातों ने भरत के आने का समाचार श्री राम को

सुनाया। लक्ष्मण ने एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर दल-बल सहित भरत को आते देखा। लक्ष्मण का मन शंकित हो उठा। उसने सोचा कि भरत हम पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। किन्तु श्री राम के समझाने-बुझाने से लक्ष्मण का क्रोध कुछ शान्त हो गया। फिर भी लक्ष्मण ने कहा, "राजपद पाकर सभी मदान्ध हो जाते हैं। लगता है भरत हम लोगों को अकेला जानकर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। अगर वे वन में भी हमें चैन से नहीं रहने देना चाहते तो आज मैं भी उन्हें बता दूंगा कि मेरे बाण कितने तीखे हैं।" पर श्री राम जी के मन में भरत के बारे में ज़रा भी शंका नहीं थी। उन्होंने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा, "भरत जैसे भाई को अयोध्या तो क्या, तीन लोकों का राज्य पाकर भी अभिमान नहीं हो सकता।

भरतहि होइ न रजमदु
विधि, हरि, हर पद पाई।

उन्होंने कहा, भरत जैसा भाई मिलना संसार में दुर्लभ है।

सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना।

इस प्रकार श्री राम लक्ष्मण को समझाने लगे कि भरत के प्रति मन में किसी प्रकार का संदेह करना उचित नहीं।

इतने में शोक से व्याकुल और मिलन की प्रसन्नता से उत्कंठित भरत श्रीराम के चरणों से लिपट गया। वह बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगा।

राम ने पाँवों में पड़े भरत को उठाकर गले लगा लिया।

इतने में तीनों माताएँ और गुरु वसिष्ठ भी आ गए। राम, सीता और लक्ष्मण ने सबको साष्टांग प्रणाम किया।

जब कुलगुरु वसिष्ठ जी ने महाराज दशरथ के स्वर्ग-सिधारने का समाचार सुनाया तो राम-लक्ष्मण शोक से बेसुध होकर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब वे सचेत हुए तो महाराज के अन्त-काल के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे।

इसके बाद सभी ने नदी में स्नान किया। स्नान के पश्चात् श्रीराम ने पितृ-तर्पण किया और कुटिया को लौट आए।

दूसरे दिन स्नान आदि से निबटकर भरत ने श्रीराम से विनयपूर्वक कहा, "भैया, आप हम सबमें बड़े होने के कारण हमारे लिए पिता के समान हैं। यह राज्य आप का ही है। आप हमें अपना राज्याभिषेक करने की आज्ञा दीजिए। आप राज्य को संभालकर प्रजा का तथा हमारा पालन कीजिये। क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए जब आप पितृऋण से मुक्त हो जाएँगे तब अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर वन में तपस्या कीजिएगा। यह समय आपके वनवास का नहीं है। मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी माता ने जो कुछ किया है, उसे भूल जाइये। उन्हें अपने किए का बहुत पछतावा है।" यों कहकर भरत ने उन्हें मनाने के लिए उनके पाँव पकड़ लिए।

श्रीराम ने भरत को उठाकर अपने पास बिठा लिया और बोले, "भरत, हम दोनों को पिताजी की आज्ञा का पालन करना चाहिये। और उनकी आज्ञा का तुम्हें पता ही है।"

"पिताजी ने माताजी के कहने से ऐसा किया है। यह उनकी अपनी इच्छा नहीं थी।" भरत ने उत्तर दिया।

श्रीराम बोले, "यह बात नहीं है। पिताजी सत्यवादी थे। उन्होंने अपने वचन की रक्षा के लिए ही यह सब कुछ किया था। यदि वे ऐसा न करते तो अपनी प्रतिज्ञा से फिरते। मैं भी उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करने की

प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। तुम जानते ही हो, रघुकुल की यही रीत है। जान भले ही चली जाए पर वचन झूठा न जाए।"

यह सुनकर भरत ने कहा, "यदि वन में रहना आवश्यक है तो मैं वन में रहूंगा।"

इस पर भरत को समझाते हुए श्रीराम बोले, "भरत, बनवास मुझे मिला है, तुझे नहीं! बात बदलने के बहाने राजनीति में ढूंढे जाते हैं, धर्म में नहीं।"

भरत निरुत्तर हो गया। फिर उसने विचार कर कहा, "यदि आपका वन से अयोध्या लौटना किसी प्रकार भी संभव नहीं है तो फिर मुझे आज्ञा दीजिए, मैं भी वन में रहकर लक्ष्मण की तरह आपकी सेवा करूँगा।"

इस पर भरत को समझाते हुए श्रीराम बोले, "तुम्हें भी पिता की आज्ञा का पालन करना है। वे तुम्हें राजकाज देखने को कह गए हैं। तुम वही करो!"

जब भरत की यह बात भी नहीं मानी गई तो वह बोला, "मैं अन्न-जल छोड़कर अपने प्राण यहीं दे दूंगा।" यह कहकर वह कुशा के आसन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ गया।

भरत का हठ देखकर श्रीराम चिन्तित हो उठे। उन्होंने गुरु वसिष्ठ को, भरत को समझाने-बुझाने के लिए कहा।

तब गुरु वसिष्ठ ने भरत को समझाया कि राम को लौटाकर ले चलने का हठ छोड़ दो।

विधाता का विधान उन्हें वन में ले आया है और उसी के अनुसार तुम्हें राज्य मिला है। यदि तुम भी वन में रह जाओगे तो प्रजा की रक्षा और पालन कौन करेगा? अपना

कर्त्तव्य पालन न करने का पाप भी तुम्हें लगेगा। इसलिए हम सब बड़ों का कहना मानकर लौट चलो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो। कर्त्तव्य-पालन ही श्रेष्ठ धर्म है। तुम भावना के वशीभूत होकर सारी बातें कर रहे हो। भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है।"

गुरु वसिष्ठ की बात सुनकर भरत चक्कर में पड़ गया कि क्या करूँ, क्या न करूँ ? उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

अन्त में गुरुजनों की आज्ञा को शिरोधार्य कर भरत ने कहा, "भैया, मैं हारा, आप जीते। पर मेरी एक इच्छा तो पूरी कर दीजिए। मुझे अपनी चरण-पादुकाएँ दे दीजिए। मैं इन्हें शिरोधार्य कर, इन्हें आपका प्रतिनिधि मानकर, इन के नीचे बैठकर राज-काज देखूँगा।" यों कहकर अभिषेक के लिए लाए हुए सामान में से चरण-पादुकाएँ निकालकर श्रीराम जी के पाँवों में पहनाकर भरत ने आदर सहित अपने सिर से छुआईं और श्रीराम की प्रदक्षिणा करके सम्भाल कर रख लीं। फिर भरत ने कहा, "मैं इन पादुकाओं के नाम से चौदह वर्ष तक राज्य चलाऊँगा। मैं आप ही की तरह जटाएँ रखकर, वल्कल पहनकर और कुशा की सथरी पर सोकर चौदह वर्ष व्यतीत करूँगा। आप ही की तरह कन्द मूल-फल खाकर जीवन निर्वाह करूँगा। मैं भी नगर में वास नहीं करूँगा। यदि आप चौदह वर्ष पूरे होने पर भी न लौटे तो अग्नि में प्रवेश कर अपने शरीर को स्वाहा कर दूँगा।"

श्रीरामचन्द्रजी ने चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटने की बात को स्वीकार करके भरत को विदा किया। इसके बाद भरत

के साथ जितने लोग आए थे सभी अयोध्या को लौट चले।

अध्योया के बाहर नन्दि ग्राम में पहुंचने पर भरत वहीं ठहर गए। वहीं एक कुटिया में ऊंचे आसन पर चरण पादुकाओं को रख कर, तपस्वी की तरह रहने लगे। भरत प्रति दिन चरणपादुकाओं का पूजन करते, छत्र, चामर तथा उपहार पादुकाओं को समर्पित करते और अपने को श्रीराम का सेवक मान कर राज-काज देखने लगे।

वे वल्कल पहनते, कन्द-मूल तथा फल खाते और धरती पर सोते थे। उन्होंने सारे राज-सुख-भोगों का त्याग कर दिया था। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए नियम-संयम पूर्वक वहां रहते थे।

सारी राजाज्ञाएं चरण-पादुकाओं के नाम से निकाली जाती थीं। इस प्रकार पूरे चौदह वर्ष तक भरत तपस्वी का-जैसा जीवन बिताते हुए राज-काज करते रहे। वे बड़ी अधीरता से एक-एक दिन गिन कर श्री राम के वापस अयोध्या लौटने के दिन की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने सावधान होकर अपने कर्तव्य का पालन किया।

प्रजा अपने इस तपस्वी राजा का हृदय से आदर-सम्मान करती थी। श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में चौदह वर्ष में भरत ने प्रजा की रक्षा और पालना की।

२

रावण मारा गया और लंका का राम-रावण युद्ध समाप्त हुआ। रावण की मृत्यु के दूसरे दिन प्रातः विभीषण श्री राम चन्द्र जी के लिए बड़े सुन्दर-सुन्दर कपड़े, रत्न जड़े अलंकरण और मलने तथा नहाने के लिए अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ लेकर आए। उन्होंने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की, "महाराज ! आप स्नान करिये। इससे आपकी सारी थकान दूर हो जाएगी।"

श्रीरामचन्द्र बोले, "यह सब आप प्रिय मित्र सुग्रीव को दीजिए और उन्हें स्नान कराइये। मुझे तो तुरन्त अयोध्या पहुंचना है। भरत अयोध्या में मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। पता नहीं वह कैसा है ? उसे देखे हुए एक युग बीत गया। अब उसे देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा। वह भी मेरे लिए व्याकुला होगा। आप कोई ऐसा उपाय बताइये कि मैं शीघ्र से शीघ्र अयोध्या पहुंच जाऊँ। अयोध्या से चलकर जिस मार्ग से हम यहां आए हैं वह तो बड़ा लम्बा तथा

खराब है। उस मार्ग से तो बहुत देर लग जाएगी और कष्ट भी बहुत होगा।"

विभीषण ने उत्तर दिया, "आप इसकी तनिक भी चिन्ता न कीजिए। मैं आप को एक दिन में अयोध्या पहुंचा दूंगा। हमारे यहां बहुत तेज उड़ने वाला पुष्पक विमान है। यह स्वर्गीय लँकापति रावण ने कुबेर से छीना था। यह वही विमान है, जिसमें बिठाकर रावण पँचवटी से सीता जी को लाया था। इसलिए आप निश्चिन्त होकर स्नान, भोजन और विश्राम कीजिए। अयोध्या पहुंचने की चिन्ता न कीजिए। पैदल चल कर जितने दिन यहां से अयोध्या पहुंचने में लगते, उतने दिन आप यहां पर विश्राम कीजिए और युद्ध की थकान मिटाइये।"

इस पर श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे, "मित्र विभीषण, आप नहीं जानते कि मेरा और भरत का आपस में कैसा प्रेम है। भरत तो मुझे चित्रकूट में ही लौटा ले जाने के लिए आया था। पर मैं नहीं माना था। तब उसने प्रतिज्ञा की थी कि यदि चौदह वर्ष पूरे होने पर भी मैं अध्योया नहीं लौटा तो वह एक दिन भी प्रतीक्षा नहीं करेगा और अपने आप को आग में जला कर स्वाहा कर देगा। अब आप ही बताइये कि मैं यहाँ कैसे ठहर सकता हूं। अब वनवास के चौदह वर्ष पूरे होने ही वाले हैं। थोड़ी-सी भी देर भयँकर सँकट का कारण बन जाएगी। अतः आप शीघ्रता से विमान को मँगवाइये।"

आज्ञा पाते ही विभीषण युद्ध-भूमि से लँका नगरी की ओर चल पड़े। वहां उन्होंने विमान चालक को तुरन्त

विमान तैयार करने को आज्ञा भिजवाई। विमान लेकर के श्री राम चन्द्र जी के शिविर के पास आ पहुंचे।

विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर निवेदन किया कि विमान उड़ान के लिए प्रस्तुत है।

श्रीरामचन्द्रजी ने अच्छी तरह विमान को देखा। हँस पक्षी के आकार का यह विमान बाहर से सुनहरी और अन्दर से सफेद रँग का था। इसमें बैठने के लिए सुखासन बने हुए थे। विमान के ढांचे में बाहर झांक कर देखने के लिए झरोखे थे। बड़ा लम्बा-चौड़ा था यह पुष्पक विमान। इस की चाल बड़ी ही तेज़ थी। विमान के ऊपर पीली झंडियां और झँडे लगे हुए थे।

जब श्रीरामचन्द्र, सीता जी और लक्ष्मण तीनों विमान में बैठ गए तो सुग्रीव, हनुमान तथा विभीषण ने भी उनके साथ अयोध्या चलने के लिए आज्ञा मांगी।

श्रीरामचन्द्र ने कहा, "प्रिय बन्धु सुग्रीव ! आप अपने प्रमुख वानरों के साथ शीघ्र विमान पर बैठ जाएँ और भाई

विभीषण अपने मंत्रियों सहित अयोध्या चलें।" जब सब लोग बैठ गए तो श्रीरामचन्द्र जी ने विमान को उड़ाने की आज्ञा दी। धीरे-धीरे धरती से ऊपर उठता हुआ विमान आकाश में ऊंचा उठ गया और वेग से उड़ने लगा।

श्री रामचन्द्र ने झरोखे में स्वयं देखते हुए सीता जी को भी नीचे की ओर देखने को कहा। फिर वे बताने लगे, "सीते! विमान के ठीक नीचे जो मैदान है, इसी में हमारा युद्ध हुआ है। यहां अनगिनत राक्षस और वानर मरे पड़े हैं। रक्त-पात से युद्ध भूमि में कीचड़-सा हो गया है। यह लो, हम समुद्र पार कर आए। यहीं समुद्र तट पर बन्धु विभीषण से मेरी भेंट हुई थी। यहीं पर नल-नील ने समुद्र पर पुल बनाया था। वह देखो, किष्किन्धा दिखाई दे रही है। यहीं मेरे हाथों वाली की मृत्यु हुई थी।"

किष्किन्धा का नाम सुनते ही सीता जी बोलीं, "प्राण-नाथ! मैं चाहती हूं कि यहां विमान को नीचे उतार कर सुग्रीव की पत्नी तारा तथा दूसरे वानर-सेनापतियों की पत्नियों को भी विमान में बिठाकर अयोध्या ले चलें।"

सीता जी की इच्छा का सम्मान करते हुए विमान को किष्किन्धा में नीचे उतारा गया। विमान से उतरते हुए श्रीराम चन्द्रजी ने सुग्रीव से झटपट जाकर तारा आदि को बुला लाने के लिए कहा। अन्य वानर सेनापति भी उतर कर अपनी स्त्रियों को लाने अपने-अपने घरों की ओर दौड़े।

थोड़ी ही देर बाद सभी अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर लौट आए और विमान में बैठ गए।

सब के बैठ जाने पर विमान चल पड़ा। तभी श्रीराम-

चन्द्र ने सीता जी को ऋष्यमूक पर्वत को दिखाते हुए कहा, "इसी पर्वत पर सुग्रीव से मेरी भेंट हुई थी। बात करते-करते विमान पंचवटी के ऊपर जा पहुंचा। और फिर चित्र-कूट दिखाई देने लगा। कुछ ही देर बाद अयोध्या नगरी दिखाई देने लगी। श्रीरामचन्द्र अयोध्या को दिखाते हुए सीता जी से बोले, "जानकी, हम अपनी जन्म-भूमि में लौट आए। तुम अनेक संकट झेलने के बाद लौटी हो। अयोध्या की वन्दना करो।"

वनवास के चौदह वर्षों का आज अन्तिम दिन था। श्रीरामचन्द्र ने गणना करके देखा। उन्होंने सोचा, आज नहीं, मुझे कल अयोध्या पहुंचना चाहिए। उन्होंने तुरन्त ही विमान-चालक को विमान पीछे की ओर घुमाने की आज्ञा दी। जब विमान प्रयाग के ऊपर पहुंचा तो उन्होंने उसे ऋषि भरद्वाज के आश्रम में उतारने को कहा।

आज की रात यहीं काटनी थी, इसलिए सब लोग विमान से उतर पड़े।

श्रीरामचन्द्र जी, सीता, लक्ष्मण तथा दूसरे अनेक लोगों सहित आश्रम में गए और बड़ी श्रद्धा से ऋषि-चरणों पर सिर झुकाया। ऋषि भरद्वाज ने सब का स्वागत-सत्कार किया।

श्रीरामचन्द्रजी के मन में विचार आया कि आज चौदह वर्ष पूरे हो जाने और हमारे अयोध्या न पहुंचने से निराश होकर प्रिय भाई भरत कुछ ऐसा-वैसा न कर बैठे। इसलिए निश्चय किया कि अभी हनुमान को भेज कर कल हमारे पहुंचने की सूचना दे दी जाए।

उन्होंने हनुमान को बुलाया और एक ओर लेजाकर कहने लगे, "तुम अयोध्या चले जाओ। पर रास्ते में गुह से अवश्य मिलते जाना। उससे पूछ कर तुम्हें भरत के मन की बात मालूम हो जाएगी। भरत पिछले चौदह वर्ष से राज-काज देख रहा है। प्रभुता पाकर उसे छोड़ना सहज नहीं है। राज-सत्ता बड़ों-बड़ों को मोहित कर लेती है। इस तरह गुह से बातें करके पता लगाना कि यदि भरत राजा बने रहने में राजी हो तो वहीं से वापस लौट आना। यदि यह बात हुई तो फिर मैं अयोध्या न जाकर यहीं से लौट जाऊंगा। भरत राजा बना रहे तो इससे मुझे प्रसन्नता होगी। किन्तु गुह की बातों से मालूम पड़े कि भरत मेरी प्रतीक्षा में बहुत व्याकुल है तो फिर सीधे अयोध्या जाकर मेरे आने का समाचार प्रिय भरत को सुनाना। एक बात और, केवल गुह से मिली जानकारी के भरोसे न रहना। मेरे आने का समाचार सुनकर भरत पर क्या प्रभाव पड़ा है, उसके चेहरे, चेष्टा और बात-चीत से इसका पता लगाना। यदि वह राजा बना रहे तो बहुत अच्छा। किन्तु मेरा मन कहता है कि वह मेरी प्रतीक्षा में व्याकुल होगा। तुम्हें भी ऐसा ही लगे तो फिर बताना कि मैं सबेरे ही अयोध्या पहुंच रहा हूं। फिर तुम वहीं रह जाना। यदि तुम वापस न आए तो हम प्रातः अयोध्या पहुच जाएंगे।

हनुमान चले गए। श्रीरामचन्द्र जी ऋषि भरद्वाज से अयोध्या के बारे में पूछ-ताछ करने लगे। भरद्वाज जी ने बताया कि भरत आप के वियोग से बड़ा दुःखी है। वह अयोध्या में न रहकर नन्दि ग्राम में रहता है। राज-काज

आपकी चरण-पादुकाओं के नाम से चल रहा है। जैसे आप वन में रह कर तपस्वी का जीवन बिता रहे थे, वैसे ही भरत भी तपस्वियों के भेस, तपस्वियों का भोजन और वैसे ही नियम-व्रत में रह रहा है। वह आपकी प्रतीक्षा में एक-एक दिन गिनता हुआ काट रहा है। आप ठीक समय पर आ गए, यह अच्छा हो हुआ। न आते तो पता नहीं वह क्या कर बैठता।

उधर हनुमान को गुह से पता लगा कि भरत राज्य नहीं चाहता, रामचन्द्र जी को चाहता है। इतना पता लग जाने पर हनुमान नन्दि ग्राम पहुंचा।

नन्दि ग्राम में एक कुटिया में हनुमान ने भरत को मृग-चर्म पहने, जटा बढ़ाए बैठे देखा। सामने एक ऊंचे आसन पर श्रीरामचन्द्र जी की चरण-पादुकाएं रखी हुई थीं। भरत के पास ही गेरुए वस्त्र पहने मंत्री, सेनापति और पुरोहित बैठे हुए थे।

श्रीरामचन्द्र जी के आने का शुभ समाचार सुनकर भरत के आनन्द-उत्साह का ठिकाना नहीं रहा। यह आनन्ददायक समाचार लाने और सुनाने के पुरस्कार स्वरूप भरत ने हनुमान को हज़ारों गाएं और सौ गांव देने की घोषणा की।

श्रीरामचन्द्र जी जानकी और लक्ष्मण सहित कल सवेरे अयोध्या पहुंच रहे हैं, यह समाचार बिजली की तरह तुरंत सारी आयोध्या में पहुंच गया। सारी प्रजा अपने प्रिय राजा रामचन्द्र का स्वागत करने की तैयारी करने लगी। अयोध्या के मार्ग तोरणों, पल्लवों और झंडे-झंडियों से सजाए जाने लगे। पुष्प-वर्षा करने के लिए सभी ने अपने

घरों में पुष्प लाकर रख लिए। चौराहों पर चौक पूरे गए।

उधर राजमहलों में, जो पिछले चौदह वर्षों से गुम-सुम और उदास पड़े हुए थे, नई उमंग आ गई। राज-कर्मचारी इधर-से उधर आ-जा रहे थे। सभी अपने काम में लगे हुए थे। किसी को किसी से बात करने का अवकाश नहीं था। उनके मन की खुशी उनके चेहरों पर स्पष्ट झलक रही थी। सारी अयोध्या में जैसे आनन्द का समुद्र हिलोरें ले रहा था। अयोध्या सजी-संवरी नई दुल्हिन की तरह लग रही थी। सभी ने बढ़िया गहने-कपड़े पहने हुए थे।

तीनों राज-माताएं श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के प्रिय दर्शन के लिए उतावली थीं। उधर लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला सहज संकोचवश अपने आनन्द को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। चौदह वर्ष बाद आज वे अपने प्राणपति का दर्शन-सुख प्राप्त करेंगी। श्रीराम और सीता से भी उनका दोहरा सम्बन्ध था। वे जेठ-जेठानी तो थे ही, बहनोई और बहन भी थे। उधर भरत-पत्नी माण्डवी भी परम प्रसन्न थी। श्रीरामचन्द्र के राज्य-भार संभाल लेने से भरत भी नन्दि ग्राम से राजमहल में लौटने वाले थे।

नन्दि ग्राम से लेकर राजमहल तक सड़क के दोनों ओर नागरिकों की भीड़ लगी हुई थी। सड़क के किनारे के घरों की खिड़कियां और छतें स्त्रियों और बच्चों से भरी हुई थीं। लोग 'महाराज रामचन्द्र की जय' बोल रहे थे।

तीनों माताएं, मंत्री, पुरोहित और सेनापति स्वागत के लिए नन्दि ग्राम में पहुंचे हुए थे। यहीं से यह शोभा-यात्रा नगर में होती हुई राजमहल को जाने वाली थी। स्वागत

करने वालों में सबसे आगे तीनों राज-माताएं : कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं। माताओं के पीछे, सिर पर जटा बढ़ाए, मृग-चर्म पहने, सिर पर चौकी पर रखी श्रीराम की चरण-पादुकाएं उठाए तपस्वी भरत चल रहा था। उसके पीछे चरण-पादुकाओं पर चौरी झोलते हुए शत्रुघ्न चल रहा था। उनके पीछे आठों मंत्री थे। उनके पीछे सेनापति, हाथियों और घोड़ों पर सवार सैनिक तथा पैदल सेना चली। राजकर्मचारी, बाजे-गाजे वाले तथा नागरिक पीछे थे।

सभी की आंखें आकाश की ओर लगी हुई थीं। प्रतीक्षा की ये घड़ियां भरत को बड़ी लम्बी लग रही थीं। भरत बार-बार हनुमान से पूछता, "आपने तो कहा था कि सबेरे ही आ जाएंगे। अभी तक क्यों नहीं आए ? अब तक तो उन्हें आ जाना चाहिये था। विमान को प्रयाग से यहां आने में क्या इतनी देर लगती है ? आपने वैसे ही तो नहीं कह दिया है।"

हनुमान ने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैंने जो कुछ कहा है ठीक ही कहा है। इतने में ज्यों ही हनुमान ने आकाश की ओर देखा तो उन्हें चमकता हुआ पुष्पक विमान दिखाई दे गया। उन्होंने उंगली से दिखाया। भरत ने आकाश में उड़ते विमान को देखकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

विमान और पास आ गया। अब तो सभी ने उसे देख लिया। चारों ओर 'श्रीराम आ गए' का शोर मच गया। सब के देखते-देखते विमान धरती पर उतरा। 'श्रीरामचन्द्र की जय' से सारा आकाश गूंज उठा।

सबसे पहले श्रीराम विमान से उतरे। उनके पीछे-पीछे श्रीसीता जी और फिर लक्ष्मण। फिर और सब लोग

भी उतर पड़े।

भरत ने सिर से चरण-पादुकाएं उतार कर श्रीरामचन्द्र जी के आगे रखीं और चरणों में लेटकर प्रणाम किया। श्रीराम जी ने पादुकाएं पहन लीं और भरत को उठाकर गले लगाया। फिर भरत ने सीता जी के पांव छुए और बाद में लक्ष्मण से मिले। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने सभी माताओं के चरण छुए।

सुग्रीव से गले मिलते हुए भरत ने कहा, "आप हमारे पांचवें भाई हैं।" वे विभीषण से भी मिले।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र मंत्रियों, सेनापतियों, प्रमुख राज-कर्मचारियों और नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिल कर इस अवसर के लिए विशेष रूप से सजाए रथ पर बैठकर राजमहल की ओर चले। नगर में अटारियों और छतों पर बैठे लोगों ने उन पर पुष्प-वर्षा की। मार्ग के दोनों ओर खड़े प्रजाजन उनका जय-जयकार कर रहे थे। वे सब का अभिवादन स्वीकार करते हुए राजमहल की ओर बढ़ते चले।

राजमहल के मुख्य द्वार पर राजमाता ने सोने के थाल से सबकी आरती उतारी। राजद्वार पर मंगल-गीत गाए जा रहे थे और बाजे बज रहे थे। बेटों और बहू के आने की प्रसन्नता में राजमाताएं खुले हाथ से दान दे रही थीं।

कुल-गुरु वसिष्ठ ने ब्राह्मणों को श्रीरामचन्द्र जी के राज्याभिषेक का मुहूर्त देखने को कहा। उसी दिन मंगल मुहूर्त में मंगल द्रव्यों और मंत्रों के साथ श्रीराम का राज्याभिषेक हो गया।

राज-चिह्नों और राजपद का भार संभालने पर

श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण का युवराज पद पर अभिषेक करने की इच्छा प्रकट की किन्तु लक्ष्मण ने उसे नम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया। तब भरत का युवराज पद पर अभिषेक किया गया।

सब ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणों ने अक्षत पुष्पों के साथ शुभाशीर्वाद बरसाये।

सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद तथा किष्किन्धा से आए प्रमुख वीरों और विभीषण के मंत्रियों—सभी को सुन्दर गहनों-कपड़ों की भेंट दी गई। सभी का राजोचित सम्मान किया गया।

उत्सव की समाप्ति पर हनुमान श्रीरामचन्द्र जी की सेवा के लिए अयोध्या में ही रह गए। शेष सुग्रीव-

विभीषण आदि सभी लौट गए।

राम-राज्य का युग प्रारम्भ हुआ। सब जगह सुख-शांति की वर्षा होने लगी। समय पर वर्षा बरसने लगी। भरपूर फसलें होने लगीं। सभी के रोग-शोक दूर हो गए। राम राज्य में किसी को किसी वस्तु की कमी नहीं थी। प्रजाजनों में बड़ा प्रेम था। धर्म में सभी की श्रद्धा थी। राम राज्य में एक भी चोर नहीं था।

लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सदा श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा का तत्परता से पालन करते थे। राम-भक्त हनुमान तो छाया की तरह श्रीरामचन्द्र जी के पास बने रहते। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के राज्यकाल में स्वर्ग ही धरती पर उतर आया था।

३

राम-राज्य की स्थापना के अनेक वर्षों बाद, एक दिन केकय देश के राजा, भरत के मामा युधाजित का संदेश लेकर उनके बूढ़े पुरोहित गार्ग्य अयोध्या पधारे।

उन्होंने राजा युधाजित का सन्देश सुनाते हुए श्रीराम-चन्द्र जी से कहा, "महाराज, आप के मामा राजा युधाजित इस समय बड़े संकट में हैं। शत्रु ने उन्हें घेर लिया है। सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बसे सुन्दर प्रदेश को शत्रु ने उजाड़ दिया है। शैलूष नामक गन्धर्व राजा ने यह शत्रुता पूर्ण आक्रमण किया है। उसने उस प्रदेश में जन-धन की बड़ी हानि की है। लोगों को भगाकर वहां वह गन्धर्वों

की बस्तियां बसा रहा है। वह छिप-छिप कर आक्रमण करता है। सभी राजानक उससे भयभीत हैं और इधर-उधर भाग रहे हैं। आप के सिवा इस संकट से उबारने वाला दूसरा कोई नहीं है। इसलिए महाराज, कृपाकर के अपने छोटे भइयों—लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को भेज कर अपने मामा का संकट दूर कीजिए और रघुकुल का यश बढ़ाइये।"

श्रीरामचन्द्र जी मन में सोचने लगे, तीनों भाइयों को भेजने की क्या आवश्यकता है। इस काम को कोई एक भी कर लेगा। फिर सोचने लगे कि तीनों में से किसे भेजें! उन्होंने सोचा, लक्ष्मण ने लंका के युद्ध में मेघनाद जैसे अतुल बलशाली वीर को मार कर खूब नाम कमाया है और अपनी वीरता की धाक जमा दी है। मथुरा के लवणासुर को मार कर शत्रुघ्न ने भी अपने नाम को सार्थक किया है। किन्तु अभी तक भरत को अपना शौर्य-पराक्रम दिखाने का अवसर नहीं मिला है। वह भी अपनी वीरता और युद्ध-कौशल का परिचय दे सके, इसलिए उसे भेजना ही ठीक रहेगा। उन्होंने पुरोहित जी को तो आश्वासन देकर भोजन-विश्राम करने के लिए कहा और भरत को बुलाकर सारी बात बता दी। उन्होंने भरत को तुरंत चतुरंगिणी सेना तैयार करके जाने की आज्ञा दी। भरत ने तुरंत सेनापति को बुलाकर तैयारी की आज्ञा दी। कितने हाथी, कितने घोड़े, कितने रथ और कितने पैदल सैनिक चलेंगे, यह बताया।

उधर श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को बुलाकर भरत को तैयारी में सहयोग देने के लिए कहा ताकि ज्यादा समय न लगे। उन्होंने लक्ष्मण को कहा, "भरत के साथ जाने वाली

चतुरंगिणी सेना के साथ विष की चिकित्सा करने वाले वैद्य, चीर-फाड़ जानने वाले वैद्य तथा ओषध द्वारा रोगों की चिकित्सा करने वाले वैद्य भेजो। साथ ही राज, लुहार, तरखान और मार्ग जानने वाले तथा मार्ग बनाने वाले लोगों की भी एक टुकड़ी होनी चाहिये। हथियारों को पैना करने वाले तथा हथियारों की मरम्मत करने वाले भी साथ रहें।"

आज्ञा पाते ही लक्ष्मण अपने काम में लग गए। उधर भरत जी के उत्साह का क्या कहना! आज्ञा सुनते ही वीरोचित उत्साह से उनकी छाती तन गई। वे सेनापतियों को आज्ञा देकर ही संतुष्ट नहीं हुए, स्वयं तैयारी की देख-भाल करने लगे। अपने साथ ले चलने के लिए अपने दोनों पुत्रों —तक्ष और पुष्कर को भी उन्होंने तैयार होने की आज्ञा दी। सेना के सभी अंग तैयार हो कर अपने-अपने स्थान पर पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। बस, आज्ञा मिलने भर की देर थी। आज्ञा मिलते ही रणवाद्य बज उठे। संचलन धुन बजने लगी। सूर्य के चिह्न से सुशोभित राजध्वज का भरत ने पूजन किया। इसके बाद वे सफेद घोड़े पर चढ़ कर राजसभा की ओर चले। वहां पहुंच कर उन्होंने घोड़े से उतर कर अयोध्या-पति श्री रामचन्द्र जी के चरणों में झुक कर प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्र जी सिंहासन से उतर आए और भरत जी को शुभाशीर्वाद देकर बोले, "प्रिय भरत, विजय के लिए जाओ, शत्रु को खदेड़ कर प्रजा को निर्भय करो। यशस्वी होकर अयोध्या लौटो। सिन्धु नदी के दोनों उजड़े तटों को फिर बसाकर तक्ष और पुष्पर का अभिषेक करके दोनों को दोनों तटों की रक्षा के लिए नियुक्त कर, तब आना। इससे

वहां की प्रजा का मनोबल बढ़ेगा। प्रजा का मनोबल ही राजा का बल होता है। प्रजा के सुख में राजा का सुख है। यही क्षात्र धर्म है। उसी का पालन करने मैं तुम्हें भेज रहा हूं।"

इसके बाद भरत सजे हुए हाथी पर चढ़े। प्रेम वश लक्ष्मण भी हाथी पर चढ़ गए और भरत के ऊपर छत्र पकड़े रहे। राजध्वज के पीछे बजते बाजों के साथ सेना ने कूच किया। अयोध्या से बाहर कुछ दूरी पर सेना ने रात काटने के लिए पड़ाव डाला। श्रीलक्ष्मण तथा विदाई देने गए हुए अन्य लोग वहाँ से लौट आए।

श्रीभरत ने सेनापति विजय को आज्ञा दी कि अभी मार्ग-साफ करने वाली टुकड़ी को आगे भेजो ताकि मार्ग निष्कंटक हो जाए। साथ ही मार्ग में आने वाली नदियों पर पुल तथा नावों की व्यवस्था करें। मार्ग में पड़ाव डालने के लिए उचित व्यवस्था करें और जहां पानी की उचित व्यवस्था न हो, वहां कुएं खोदें।

आज्ञा मिलते ही अग्रगामी सेना अपने कार्य के लिए चल

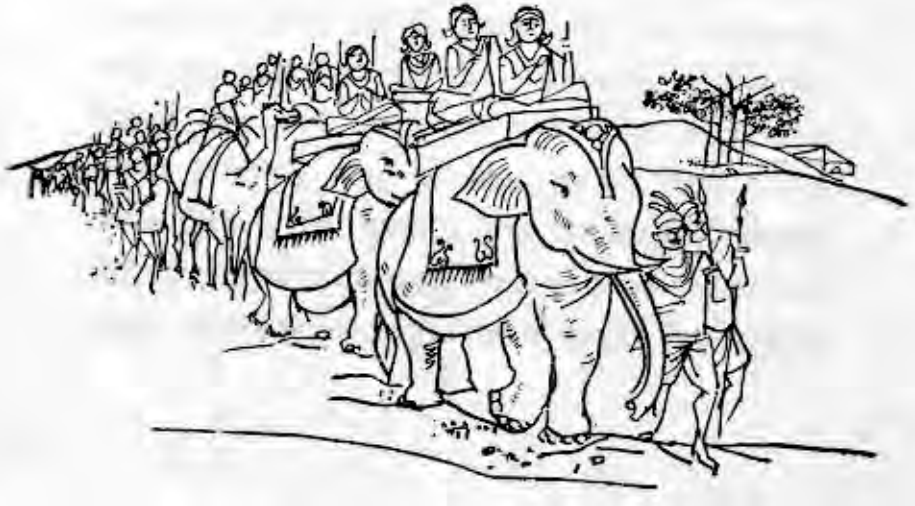

पड़ी। दूसरे दिन प्रातः ही सेना ने आगे के लिए कूच किया। सारा सामान ऊँटों, खच्चरों, बैल-गाड़ियों तथा हाथियों पर लादा गया। सेना के चिकित्सा विभाग पर भिन्न प्रकार की ध्वजाएं लगाई गई थीं। उन पर चिकित्सा विभाग के प्रतीक चिह्न बने हुए थे।

गंगातट पर पहुंचे तो नावें तैयार खड़ी थीं। कुछ नावें पशुओं के पूरे चमड़े को सीकर और हवा भर कर बनाई गई थीं। अनेकों ने नावों द्वारा और कुछ ने हाथियों पर गंगा पार की। गंगा पारकर रात का पड़ाव डाला। दूसरे दिन की यात्रा में सेना ने जब यमुना पार की तो यहाँ राजा सुरथ, गोरसेन तथा प्रभद्रक ने भरत की अगवानी की। वे कुरुक्षेत्र तक साथ गए। तदनन्तर व्यास नदी को पार करने पर त्रिगर्त्त प्रदेश (कांगड़ा) का राजा वसुधान, कुलूत (कुल्लू) का राजा जय तथा दाशेरकों के राजा गोवाशन ने उनका स्वागत किया। इसके बाद रावी पार करके सेना आगे बढ़ी। फिर देविका नदी पार की।

यहां से आगे बढ़ने पर पहाड़ी राजकुमार श्रेणिमान्, वसुबन्धु, सुयोधन तथा मद्र देश के राजा अंशुमान् ये पांच राजा मिले। शाकल (स्यालकोट) के राजा अंशुमान ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। भरत तीन दिन यहां विश्राम करते रहे।

इसके बाद चन्द्रभागा (चनाब) पार करने पर फिर तीन राजाओं—श्रुतंजय, कृतंजय और काश्मीर नरेश सुबाहु ने उनका राजकीय स्वागत किया। वे झेलम पार तक भरत के साथ-साथ गए। आगे सुदामा नदी को पार कर सेना ने केकय

देश की सीमा में प्रवेश किया।

सहायता के लिए आ रहे भानजे भरत के आगमन का समाचार पाकर उनके मामा केकय देश का राजा युधाजित दल-बल सहित उनकी अगवानी के लिए आए। सेना ने नगर के बाहर छावनी का पड़ाव डाला। भरत रथ पर बैठकर मामा के राजमहल की ओर चले तो सड़क के दोनों ओर पंक्तियों में खड़े लोगों ने उनका जय-जयकार किया। लोगों के भयभीत और मुर्झाए चेहरों पर सेना सहित भरत के आने से प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उनकी जान में जान आई।

रात को युद्ध के सम्बन्ध में विचार करने के लिए सभा जुटी। इसमें केकय देश के राजा युधाजित, उनके मंत्री, राज-पुरोहित और सेनापति, पास-पड़ोस के दूसरे रजवाड़ों के साथ, भरत, उनके सेनापति विजय तथा अयोध्या राज्य के युद्ध-सलाहकार कालविद् ने भाग लिया।

राजा युधाजित ने कहा, "यदि आज रात को ही सोए

हुए शत्रु पर आक्रमण किया जाए तो विजय निश्चित है। शत्रु को अयोध्या की सेना के आने का पता भी नहीं है। शत्रु असावधान है। मेरे विचार से यह अवसर आक्रमण के लिए बहुत ही उपयोगी है।"

राजा युधाजित का यह सुझाव अयोध्या राज्य के युद्ध-सलाहकार कालविद् को नहीं जंचा। वह बोले, "भले ही इसमें विजय की पूरी सम्भावना हो पर छल-युद्ध को अच्छा-नहीं माना जाता। हम दिन के समय ही आक्रमण करेंगे और जीतेंगे। हमारी विजय सुनिश्चित है।"

इस पर राजपुरोहित बूढ़े गार्ग्य बोले, "राजनीतिज्ञ युद्ध को पहला नहीं अन्तिम उपाय मानते हैं। आक्रमण से पूर्व एक बार दूत द्वारा सारी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। वे हमारा भू-भाग खाली करना स्वीकार कर लें तो दोनों पक्षों के जन-धन का विनाश बच जाएगा। हिमालय पर्वत हमारे बीच की प्राकृतिक सीमा है। उन्होंने सीमा का उल्लंघन किया है। वे बात-चीत द्वारा उस पार चले जाना स्वीकार कर लें तो उनके लिए उचित ही है।"

पुरोहित गार्ग्य की सलाह भरत जी को बड़ी अच्छी लगी। उन्होंने राजनीति के पंडित पुरोहित गार्ग्य से ही दूत का काम करने का निवेदन किया। अपने मामा के सुझाव से असहमति प्रकट करते हुए कहा, "रात को सोते हुए शत्रु पर आक्रमण करने की बात मेरी समझ में नहीं आती। रघुवंश की परम्परा सदा से धर्म-युद्ध की रही है। छल से नहीं, बल से ही हम शैलूष को परास्त करेंगे।"

पुरोहित गार्ग्य दूत बन कर गन्धर्वराज शैलूष से बात करने गए। उनके बहुत समझाने-बुझाने पर भी शैलूष नहीं माना। तब वापस लौट आए। उन्होंने भरत जी को बताया कि शैलूष लड़ाई किए बिना नहीं मानेगा।

और कोई उपाय न देखकर भरतजी ने सेना को आक्रमण के लिए तैयार होने को कहा। इसके बाद अपने गुप्तचरों को बुलाकर, उन से लाए हुए समाचारों को सुनने लगे।

दूसरे पक्ष में शैलूष भी अपने राजपुरोहित, मंत्रियों और सेनापतियों से युद्ध के सम्बन्ध में सलाह करने लगा। उसके पुरोहित नाड़ायन ने इस समय युद्ध करना अनुचित बताया। उन्होंने कहा, "यहां के निवासी हमारे विरुद्ध हैं। वे हमें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इस दशा में हम यहां स्थायी रूप से कभी नहीं रह सकेंगे। यहाँ रह कर इस भूमि भाग पर अधिकार जमाकर न तो हम खेती करना चाहते हैं और न व्यापार। बसने के लिए पहले ही हमारे पास बहुत धरती खाली पड़ी है। धन की आपको चाह नहीं है। वह तो हमारे देश में सुमेरु पर्वत में, स्वर्ण भंडार के रूप में अथाह मात्रा में विद्यमान है। फिर यह क्लेश हम क्यों मोल लें। कभी हम उन पर आक्रमण करेंगे और कभी वे हम पर। दोनों पक्षों का जीवन दूभर हो जाएगा। इसलिए मेरे विचार में हमें यहां से सम्मान पूर्वक हट जाना चाहिए। भरत से यदि हमारी मित्रता हो जाती है तो इसका अच्छा ही परिणाम निकलेगा।"

यह सुनकर गन्धर्व-राज शैलूष ने कहा, "मैं आप से सहमत नहीं हूं। मेरा आत्माभिमान शत्रु के सामने झुकने

के लिए तैयार नहीं है। यह युद्ध होकर रहेगा, चाहे इसका कुछ भी परिणाम निकले।"

"तो आपके सामने देश-हित या न्याय नहीं, अपना अहंकार है। आप अपने अहंकार को तुष्ट करने के लिए यह नर-संहार करना चाहते हैं?" नाड़ायन ने कहा।

राजा के पास कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं था। उसने कहा, "न्याय-अन्याय का निर्णय मेरी तलवार करेगी, आपका तर्क नहीं।"

इस पर नाड़ायन अपना विरोध प्रकट करने के लिए सभा से उठकर चले गए। उन्हें किसी ने न रोका, न मनाया।

गन्धर्वराज ने कहा, "जाइये, हमें आप जैसे डरपोकों की कोई आवश्यकता नहीं है।"

सभा ने निश्चय किया कि रात को सोई हुई भरत की सेना पर आक्रमण करके, मार-काट दिया जाए। उसी सेना के बल पर युधाजित् कूद रहा है। उस सेना के समाप्त हो जाने से वह भी भाग खड़ा होगा।

इस निश्चय के अनुसार गन्धर्व सेना ने रात को भरत की सेना पर आक्रमण के लिए कूच कर दिया। पर प्रातः आक्रमण करने की तैयारी में लगी होने के कारण सारी भरत सेना जाग रही थी। इसलिए गन्धर्व-सेना को आक्रमण के अनुकूल अवसर नहीं मिला। गन्धर्व सेना अपने शिविर में लौट आई।

दूसरे दिन भरत की सेना ने दिन में गन्धर्वों की सेना पर धावा बोल दिया। गन्धर्व सेना भी इसके लिए पहले से ही तैयार थी। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। हजारों

वीर सैनिक मरने-कटने लगे।

दोनों पक्षों ने आपस में यह तय किया कि सूर्य छिपने पर युद्ध बन्द कर दिया करेंगे और दिन निकलने पर शुरू किया करेंगे। कुल छः दिन तक यह युद्ध चला। सातवें दिन भरत जी के हाथों शैलूष मारा गया। राजा के मरने का समाचार फैलते ही उसकी सेना में भगदड़ मच गई। गन्धर्व हार गए। विजय का सेहरा भरत जी के सिर बन्धा।

केकय देश में विजय के उत्सव मनाए जाने लगे। जो लोग शत्रु के डर से अपने घर छोड़कर भाग गए थे, अपने-अपने घरों में वापस आ गए।

कुछ दिनों बाद बदले की भावना से शत्रु फिर सिर न उठाए, इसलिए भरत जी सेना सहित वहीं ठहरे रहे।

शत्रु से रक्षा की पक्की व्यवस्था करने के लिए उन्होंने सिन्धु नदी से इस ओर तक्षशिला और उस पार पुष्पावती नामक नगरियाँ बसाईं। इन नगरियों के नाम भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर के नाम पर रखे गए थे।

तक्षशिला के राजपद पर तक्ष का राज्याभिषेक करके और पुष्पावती के राजपद पर पुष्कर का राज्याभिषेक करके भरत जी अयोध्या लौट जाए।

इस सारे काम में भरत जी के कोई पांच वर्ष लग गए।

० ० ०

इस आदर्श-चरित्र महापुरुष का देहान्त, श्रीरामचन्द्र जी के लीला संवरण के बाद, अयोध्या से डेढ़ कोस की दूरी पर स्थित 'गो प्रतार तीर्थ' में हुआ।

० ० ०